सागर बाद भगवान विमलनाथ हुए थे । इनके उत्पन्न होनेके पहले एक पल्यतक भारतवर्ष में - धर्म का विच्छेद हो गया था । उन की आयु साठ लाख हर्व की थी । शरीर की ऊंचाई साठ धनुष और रंग सुवर्ण के समान पीला था । जब इनके कुमारकाल के पन्द्रह लाख वर्ष बीत गये तब इन्हें राज्य की प्राप्ति हुई । राज्य पाकर इन्होंनें ऐसे ढंग से प्रजाका पालन किया जिससे - इनका निर्मल यश समस्त संसार में फैल गया था । महाराज कृतवर्मा ने अनेक सुन्दरी कन्याओं के साथ उनका विवाह कराया था । जिसके साथ तरह तरहकें कौतुक करते हुए वे सुखसे समय बिताते थे । बीच बीचमें इन्द्र आदि देवता विनोद - गोष्ठियों के द्वारा उनका मन बहलाते रहते थे । इस तरह हर्ष पूर्वक राज्य करते हुए जब उन्हें तीन लाख वर्ष हो गये तब वे एक दिन उषाकालमें - किसी पर्वतकी शिखरपर आरुढ होकर सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे । उस समय उनकी दृष्टि सहसा घासपर पडी हुई ओसपर पडी । वे उसे प्रकृति की अद्‌भुत देनगी समझकर बडे प्यार से देखने लेगे । उसे देखकर उन्हें सन्देह होने लगा कि यह हरी भरी मोतियोंकी खेती है ? या ह्दय बल्लभ चन्द्रमा के गाढ आलिंगन से टूटकर बिखरे हुए निशा - प्रेयसी के मुक्ताहार के मोती है ? या चकवा चकवी की विरह वेदना से दु:खी होकर प्रकृति महादेवी ने दु:खसे आंसू छोडे है । या विरहिणी नारियों पर तरस खाकर कृपालु चन्द्र महाराजने अमृत वर्षा की है ? या मदनदेव की निर्मल कीर्ति रुपी गंगा के जलकण विखरे पडे है ? इस तरह भगवान विमलनाथ बडे प्रेमसे - उन हिमकणों को देख रहे थे । इतनेंमें प्राची दिशासे सूर्य का उदय हो आया ।

उसकी अरुण प्रभा समस्त आकाश में फैल गई । धीरे - धीरे उसका तेज बढ ने लगा । विमलनाथ स्वामी ने अपनी कौतुक भरी दृष्टि हिमकणोसे उठाकर प्राची की और डाली । सूर्यकी अरुण तेज को देखकर उन्हें बहूत ही आनन्द हुआ पर प्राची की ओर देखते हुए भी वे उन हिमकणोंकों भूले नही थे । उन्होंनें अपनी दृष्ट सूर्य से हटाकर ज्योही घासपर डाली त्योही उन्हें हिमकणोंका पता नहीं चला । क्योंकि वे सूर्यकी किरणों का संसर्ग पाकर क्षण एक में क्षिति में विलीन हो गये थे । इस विचित्र परिवर्तन से उनके दिलपर भारी ठेस पहुची । वे - सोचने लगे कि मैं जिन हिमकणों को एक क्षण पहले सतृष्ण लोचनोंसे देख रहा था अब द्वितीय क्षण में उनका पता नही है क्या सही संसार है ? संसारके प्रत्येक पदार्थ क्या इसी तरह क्षणभंगूर है ? ओंह । मैं अब तक देखता हुआ भी नहीं देखता था । मैं भी सामान्य मनुष्यों की तरह विषयवासना मैं बहता चला गया ।

खेद ! आज इन हिमकणोंसे , ओस की बूंदोंसे दिव्य नेत्र प्राप्त हुए है । मैं अब अपना कर्तव्य निश्चय कर चुका । वह यह है कि मै बहुत शीघ्र इस भंगुर संसार से - नाता तोड कर आपमे समा जाऊं । उसका उपाय दिगम्बर मुद्रा को छोड कर और कुछ नहीं है । अच्छा तो अब मुझे राज्य छोड कर इस निर्मल नभ के नीचे बैठकर आत्मध्यान करना चाहीए । ऐसा विचार कर भगवान विमलनाथ ने दीक्षा

धारण करने का दृढ निश्चय कर लिया । उसी समय ब्रह्मलोक से आकर लौकान्तिक देवोंने विचारों का समर्थन किया ।

अपना कार्य पूरा कर लौकान्तिक देव अपने अपने स्थान पर पहुंचे ही होंगे कि चतुर्निकाय के देव अपनी चेष्टाओं से वैराग्य गंगा को प्रवाहित करते हुए कम्पिला नगरी में - आये । भगवान भी अन्यमनस्क हो पर्वतमाला से उतरकर घरपर आये । वहां उन्होंने अभिषेक पूर्वक पुत्र के लिये राज्य दिया और आप देव निर्मित पालकी पर सवार होकर सहेतुक बन गये । वहां पहुंचकर उन्होंने नमः सिध्देभ्य: कहते हुए माघ शुक्ला चतुर्थी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में शम के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ले ली । विशुध्दि के बढने से उन्हें उसी समय मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया । देव लोग तप:कल्याणक का उत्सव समाप्त कर अपने - अपने स्थानोंपर चले गये ।

भगवान विमलप्रभ दो दिन का योग समाप्त कर तीसरे दिन आहर के लिये नन्दपुर पहुंचे । वहां उन्हें वहांके राजा जयकुमारने भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान के प्रभाव से प्रभावित होकर जयकुमार महाराज के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये । आहार के बाद वे पुन: बन में लौट आये और आत्मध्यान में लीन हो गये । इस तरह दो दिनके अन्तर से
आहार लेते - हुए उन्होंने मौन रहकर तीन वर्ष छद्मस्थ अवस्था में बिताय । इसके बाद उसी सहेतुक बनमें दो -दिनके उपवास की प्रतिज्ञा लेकर जामुन के पेड के नीचे ध्यान लगाकर विराजमान हुए । जिससे - उन्हें माघ शुक्ला षष्ठीके दिन शाम के समय उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में घातिया कर्मो का नाश होने - से पूर्णज्ञान ́केवलज्ञान॒ प्राप्त हो गया । उसी समय देवोंने आकर ज्ञानकल्याणक का उत्सव किया इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरण की रचना की । उसके मध्य में सुवर्ण सिंहासनपर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया, दिव्य उपदेशोंसे समस्त जनता को सन्तुष्ट कर दिया । जब उनका प्रथम उपदेश समाप्त हुआ तब इन्द्रने मधुर शब्दों में स्तुति कर उनसे अन्यत्र विहार करने की प्रार्थना की । इन्द्र की प्रार्थना सुनकर उन्होंने प्राय:समस्त आर्य देशों में विहार किया । अनेक भव्य प्राणियों का संसार - सागर से समुध्दार किया । जगह-जगह स्याद्वाद वाणी के - द्वारा जीव - जीवादि तत्वों का व्याख्यान किया । उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक नर-नारियों ने देशव्रत और महाव्रत ग्रहण किये थे ।

आचार्य गुणभद ने लिखा है कि उनके समवसरण में मन्दर आदि पचपन गणधर थे, ग्यारह सौ द्वादशांग के वेत्ता थे, छत्तीस हजार पांच सौ तीस शिक्षक थे । चार हजार आठ सौ अवधिज्ञानी थे, पांच हजार पांच सौ केवली थे । नौ हजार विक्रिया ऋध्दि के धारण करने - वाले - थे, पांच हजार पांच सौ मन: पर्यय ज्ञानी थे और तीन हजार छह सौ वादी थे इस तरह सब मिलाकर अडसठ हजार मुनिराज थे । पद्मा आदि एक लाख तीन हजार आर्यिकाएं थी दो - लाख श्रावक चार लाख श्राविकांएं , असंख्यात देव - देवियां और संख्यात तिर्यच थे ।

जब आयु का एक माह बाकी रह गया तब वे सम्मेद शिखर पर आ विराजमान हुए । वहां उन्होंने योगनिरोधकरआषाढकृष्णअष्टमीकेदिनशुक्लध्यरा अवशिष्ट अघातिया कर्मो का संहार किया और अपने शुभ समागम से मुक्ति वल्लभा को सन्तुष्ट किया । उसी समय देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की ।

भगवान अनन्तनाथ

त्वमीदृस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमते र्महामुने ।
अशेष माहात्म्य मनीर यन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधे ।।

- आचार्य समन्तभद्र

हे महामुने ! आप हो, वैसे हो , मुझ अल्पमति का यह प्रलाप, जब कि समस्त माहात्म्य को प्रकट नहीं कर रहा है तब भी सुधा - सागर केस्पर्शसे समान कल्याणकेलिये ही है ।

१. पूर्वभव वर्णन

धातकी खण्ड द्वीपमें पूर्व मेरु की ओर उत्तर दिशामें एक अरिष्ट नाम का नगर है जो अपनी शोभासे पृथ्वी का स्वर्ग कहलाता है । उसमें किसी समय पद्मरथ राजा राज्य करता था । उसकी प्रजा हमेशा उससे सन्तुष्ट रहती थी वह भी प्रजा की भलाई केकोई बात उठा नहीं रखता था । एक दिन वह स्वयंप्रभ तीर्थकर की बन्दना केलिये गया । वहांपर उस ने भक्ति पूर्वक स्तुति की और समीचीन धर्म का व्याख्यान सुना । व्याख्यान सुनने केबाद वह सोचने लगा कि सब इन्द्रियों केविषय क्षण भंगुर है । धन पैर की धूलि केसमान है , यौवन पहाडी नदी के वेग केसमान है , आयु जल केबबूलों की तर चपल है और भोग सर्प केभोग - फणकेसमन भयोत्पादक है । मै व्यर्थ हो राज्य कार्य में उलझा हुआ हुं , ऐसा विचार कर उसने धनमित्र पुत्र केलिये राज्य देकर किन्हीं आचार्य वर्य के पास दिगम्बर दीक्षा
ले ली । उन्हींके पास रहकर उसने ग्यारह अंगो का अध्ययन किया और दर्शन विशुध्दि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थकर प्रकृति का बन्ध किया । वह आयुके अन्त में सन्यास पूर्वक मरकर सोलहवें अच्युत स्वर्ग केपुष्पोत्तर विमान में देव हुआ । वहांपर उसकी आयु बाईस सागर की थी, साढे तीन हाथ ऊंचा शरीर था और शुक्ल लेशा थी । वह ग्यारह माह बाद श्वासोच्छवास लेता और बाईस हजार वर्ष बाद मानसिक आहर ग्रहण करता था । उसकेअनेक देवियां थी जो - अपने दिव्य रुपसे उसे हमेशा सन्तुष्ट किया करती थी । वहांपर कायिक प्रवीचार मैथुन नहीं था। किन्तु मनमें देवांगनाओं की अथिलाषा मात्र से उनकी कामव्यथा शान्त हो जाती थी । वह अपने -कहजात अवधिज्ञानसे सातवें नरक तकेरुपी पदार्थो को जानता था और अणिमा, महिमा आदि ऋध्दियों का स्वामी था । यही देव आगे भवमें भगवान अनन्तनाथ होगा ।

वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के दक्षिण भरतक्षेत्र में अयोध्या नगरी है । उसमें किसी समय इक्ष्वाकुवंशीय - सिहंसेन राजा राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम जयश्यामा था उस समय जयश्यामा - के समान रुपवती, शीलवती , और सौभाग्यवती स्त्री दुसरी नहीं थी । जब ऊपर कहे हुए देवकी वहांकी स्थिति छह माह की बाकी रह गई तबसे राजा सिंहसेन के घरपर कुबेर ने रत्नों - की वर्षा करना शुरु कर दी और बापी , कुप, तालाब , परिखा , प्राकार आदिसे शोभायमान नई अयोध्या को रचना कर उसमें राजा तथा समस्त नागरिकों को ठहराया । कार्तिक कृष्णा - प्रतिपदा के दिन रेवती नक्षत्र में रात्रि के पिछले पहरमें महादेवी जयश्यामा ने गजेन्द्र आदि सोलह स्वप्न देखे और अन्तमें मुंहमे घुसते हुए किसी सुन्दर हाथीको देखा । उसी समय उक्त देव ने स्वर्गीय वसुधा से मोह तोड कर उसके गर्भ में प्रवेश किया । सबेरा होते ही उसने पतिदेव महाराज सिंहसेन से स्वप्नों का फल पूछा । वे अवधिज्ञान से जानकर कहने लगे कि आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर बालक ने अवतार लिया है । ये सब इसीके अभ्युदय के सूचक है इधर महाराज रानीके सामने तीर्थकर के माहात्म्य और उनके पुण्यके अतिशय का वर्णन कर रहे थे ।

उधर देवोंके जय जय शब्दसे आकाश गूंज उठा । देवोंनें आकर राज भवन की प्रदक्षिणाएं की, स्वर्गसे लाये हुए वस्त्राभूषणों से राजदम्पति का सत्कार किया तथा और भी अनेक उत्सव मनाकर अपने स्थानों की ओर प्रस्थान किया । यह सब देखकर रानी जयश्यामा के आनन्द का पार नहीं रहा । धीरे धीरे गर्भ के नौ मास पूर्ण होने पर उसने ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन बालक भगवान् अनन्तनाथ को उत्पन्न किया । उसी समय देवों ने आकर बालक को मेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक किया और फिर अयोध्यामें वापिस आकर अनेक उत्सव किये । इन्द्र ने आनन्द नाम का नाटक किया और अप्सराओं ने मनोहर नृत्य से प्रजाको अनुरंजित किया । सबकी सलाहसे बालक का नाम अनन्तनाथ रक्खा गया था जो कि बिलकुल ठीक मालूम होता था क्योंकि उनके गुणों का अन्त नहीं था (पार नही था) जन्मोत्सवके उपलक्ष्य में अयोध्यापुरी इतनी सजाई गई थी कि वह अपनी शोभा के सामने स्वर्गपुरीको भी नीचा समझती थी । महाराज सिंहसेन ने ह्दय खोलकर याचकोंको मनवांछित दान दिया । देव लोग जन्म का उत्सव पूरा कर अपने - अपने घर गये । इधर
राज - परिवारमें बालक अनन्तनाथ का बडे प्यार से लालन - पालन होने लगा । वे अपनी बाल - कालकी मनोहर चेष्टाओंसे माता - पिताका कौतुक बढाते थे ।

भगवान विमलनाथ के बाद सौ सागर और पौन पल्य बीत जानेपर श्री अनन्तनाथ हुए थे । इनकी आयु तीस लाख वर्ष की थी, पचास धनुष ऊंचा शरीर था, स्वर्ण के समान कान्ति थी, इन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था । सात लाख पचास हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें राज्य की प्राप्ति हुई थी । वे साम, दाम भेद और दण्ड के द्वारा राज्य का पालन करते थे । असंख्य राजा इनकी आज्ञाको माला की तरह अपने

शिर का आभूषण बनाते थे । ये प्रजाको चाहते थे और प्रजा इनको चाहती थी । महाराज सिंहसेन ने इनका कई सुन्दर कन्याओं केसाथ विवाह करवाया था ।
जिस से इनका गृहस्थ जीवन अनन्त सुखमय हो गया था ।

जब राज्य करते हुए इन्हें पन्द्रह लाख वर्ष बीत गये तब एक दिन उल्कापात होने - से इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया । इन्होंने समस्त संसार से ममत्व छोडकर दीक्षा लेने का पक्का निश्चय कर लिया । उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की, उनके विचारों की सराहना की और अनित्य आदि बारह भावनाओं का स्वरुप प्रकट किया जिससे उनकी वैराग्यधारा और भी अधिक द्रुतगति से प्रवाहित होने लगी । निदान भगवान् अनन्तनाथ , अनन्त विजय नामक पुत्रके लिये राज्य देकर देवनिर्मित सागरदत्ता पालकी पर सवार हो सहेतुक बनमें पहुंचे । वहां उन्होंने तीन दिनके उपवास की प्रतिज्ञा कर ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी केदिन रेवती नक्षत्रमें शाम केसमय एक हजार राजाओंकेसाथ जिनदीक्षा ले ली । देवोंने दीक्षा - कल्याणक का उत्सव किया । उन्हें दीक्षा लेते ही मन:पर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋध्दियां प्राप्त हो गई थी । प्रथम योग समाप्त हो जाने केबाद वे आहार केलिये साकेत अयोध्यापुरी में गये । वहां पुण्यात्मा विशाख ने पडगाह कर उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया । देवोंने उसकेघर पर पंचाश्यर्च प्रकट किये । भगवान् अनन्तनाथ आहार लेने केबाद पुन:बनमें लौट आये वहां योग धारणकर विराजमान हो गये । इस तरह कठिन तपश्चरण करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्थाकेदो वर्ष मौनपूर्वक बिताये । इसकेबाद वे उसी सहेतुक बनमें पीपल वृक्षकेनीचे ध्यान लगाकर विराजमान थे कि उत्तरोत्तर विशुध्दता केबढनेसे उन्हें चैत्र कृष्णा अमावस्या केदिन रेवती नक्षत्र में दिव्य आलोक केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय देवोंने आकर समवसरण की रचना की और ज्ञान - कल्याण का उत्सव किया । भगवान् अनन्तनाथ ने समवसरण केमध्य में विराजमान होकर दिव्य ध्वनिकेद्वारा मौन भंग किया । स्याद्वाद पताका से अंकित जीव अजीव तत्वों का व्याख्यान किया । संसार का दिग्दर्शन कराया उसके दु:खों का वर्णन किया । जिससे प्रतिबुध्द होकर अनेक मानवों ने मुनि -दीक्षा ग्रहण की । प्रथम उपदेश समाप्त होनेकेबाद उन्होंने कई जगह विहार किया ।

जिससे प्राय: सभी ओर जैन धर्म का प्रकाश फैल गया । इनकेउत्पन्न होने केपहले - जो कुछ धर्म का विच्छेद हो गया था वह दूर हो गया और लोगों केहृदयों में धर्म सरोवर लहराने लगा । उनके समवसरण में जय आदि पचास गणधर थे एक हजार द्वादशांगकेजानकार थे, तीन हजार दो सौ वादी शास्त्रार्थ करने वाले थे , उनतालीस हजार पांच सौ शिक्षक थे, चार हजार तीन सौ अवधिज्ञानी थे , पांच हजार केवली थे, आठ हजार विकिया ऋध्दिकेधारक - थे । इस तरह सब मिलाकर छ्यासठ हजार मुनिराज थे । सर्वश्री आदि एक लाख आठ हजार आर्यिकाये थी, दो लाख श्रावक चार लाख श्राविकायें , असंख्यात देव - देवियां और संख्यात तिर्यच थे । समस्त आर्य क्षेत्रोंमें विहार करनेकेबाद वे आयुके अन्तमें सम्मेद शिखर पर जा विराजमान हुए ।

वहां उन्होंने छह हजार मुनियों के साथ योग निरोध कर एक महीने तक प्रतिमा योग धारण किया । उसी समय सुक्ष्म क्रिया प्रतिपाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यानोंके द्वारा अवशिष्ट अघातिया कर्मो का नाश कर चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन उषाकाल में मोक्ष भवनमें प्रवेश किया । देवों ने आकर निर्वाण क्षेत्र की पूजा की और उनके गुण गाते हुए अपने अपने घरोंकी ओर प्रस्थान किया ।

भगवान धर्मनाथ

धर्मेयस्मिन समद्भूता, धर्मादश सुनिर्मला: ।

सधर्म : शर्ममे दद्या, दधर्म मप ह्रत्यन : ।।

- गुणभद्र

जिन धर्मनाथ में उत्तम क्षमा आदि निर्मल दश धर्म प्रकट हुए थे वे धर्मनाथ स्वामी मेरे - अधर्मको दुष्कृत्य को हरकर सुख प्रदान करें ।

१ पूर्वभव वर्णन

पूर्व धातकी खण्ड में पूर्व दिशा की ओर सीता नदी के दाहिने किनारे पर एक सुसीमा नाम का नगर है उसमे किसी समय दशरथ नामका राजा राज्य करता था । वह बहुत ही बलवान् था । उसने समस्त शत्रुओं को जीतकर अपने राज्य की नींव अधिक मजबूत कर ली थी । उसका प्रताप और यश सारे संसार में फैल रहा था । एक दिन चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन नगरके समस्त लोग वसन्त का उत्सव मना रहे थे । राजा भी उस उत्सवसे वंचित नहीं रहा ।

परन्तु सहसा चन्द्र ग्रहण देखकर उसका ह्दय विषयोंसे विरक्त हो गया । वह सोचने लगा कि जब राजा चन्द्रमा पर ऐसी विपत्ति पड सकती है तब मेरे जैसे क्षुद्र नर कीटों पर विपत्ति पडना असम्भव नहीं है । मै आज तक अपने बुध्द स्वभाव को छोडकर व्यर्थ ही विषयोंमें उलझा रहा । हा ! हन्त ! अब मैं शीघ्र ही बुढापा आने के पहले ही आत्म कल्याण करने का यत्न करुंगा । बनमें जाकर जिन दीक्षा धारण करुंगा ऐसा सोचकर महाराज दशरथने जब अपने विचार राजसभा में प्रकट किये तब एक मिथ्या दृष्टी मन्त्री बोला नाथ ! भुत चतुष्टय पृथ्वी जल, अग्नि ,वायू से बने हुए इस शरीर को छोडकर आत्मा नाम का कोई पदार्थ नहीं है । यदि होता तो जन्म के पहले और मृत्युके पश्चात् दिखता क्यों नहीं ? इसलिये - आप ढोंगियोंके प्रपंचमे आकर वर्तमान के सुख छोड व्यर्थ ही जंगलमें कष्ट मत उठाइये । ऐसा कौन बुध्दिमान होगा जो गायके स्तनों को छोडकर उसके सींगोंसे दूध दुहेगा । मंत्री के बचन सुनकर राजाने कहा सचिव ! तुम समीचीन ज्ञानसे सर्वथा रहित मालूम होते हो । हमारे और तुम्हारे - शरीरमें जो अहम् - मैं - इस तरह का ज्ञान होता है वही आत्म पदार्थ की सत्ता सिध्द कर देता है । फिर करण इन्द्रियोंमें व्यापार देखकर कर्ता - आत्मा का अनुमान भी किया जा सकता है । इसलिये आत्मा पदार्थ, प्रमाण और अनुभवसे सिध्द है । उसका विरोध नहीं किया जा सकता । तुमने जो भूत चतुष्टयसे जीव की उत्पत्ति होना बतलाया है वह व्यभिचरित है क्योंकि एक ऐसे - क्षेत्र में जहां पर खुलकर हवा बह रही है अग्नि के

ऊपर रखी हुई जलभूत बटलोई में किसी भी जीवकी उत्पत्ति नहीं देखी जाती । जिस के रहते - हुए ही कार्य हो और उसके अभाव में न हो वहीं सच्चा सम्यक हेतु कहलाता है । पर यहां तो दूसरी ही बात है । यदि जन्म के पहले मृत्युके पश्चात् जीवात्मा को ------ सिध्द न मानी जावे तो मद्यप्रसूत (तत्काल में उत्पन्न हुए) बालक के दूध पीने का संस्कार कहां
से आया ? जातिस्मरण और अवधिज्ञान से जो मनुष्य अपने कितने ही भव स्पष्ट देख लेते है वह क्या है ? रही न दिखने की बात , सो वह अमूर्तिक इन्द्रियोंसे उसका अवलोकन नहीं हो सकता । क्या कभी अत्यन्त तीक्ष्ण तलवारों की धारसे आकाश का भेदन देखा गया है ? इत्यादि रुपसे मंत्री के नास्तिक बिचारो को दूर हटा, उसे जैन तत्वों का रहस्य सुना और महारथ पुत्र के लिय राज्य दे राजा दशरथ बन में जाकर विमलवाहन नाम के मुनिराज के पास दीक्षित हो गया । वहां उसने खुब तपश्चरण किया तथा सतत अभ्यासू केद्वारा ग्यारह अंगो का ज्ञान प्राप्त कर लिया । मुनिराज दशरथ ने विशुध्द हृदय से दर्शन विशुध्दि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन किया जिस से उन्हें तीर्थकर नामक महा पुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया । वे आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड कर सर्वार्थ सिध्दि विमानमें अहमिन्द्र हुए । वहां उनकी आयु तेतीस सागर की थी, एक हाथ ऊंचा सफेद शरीर था । वे तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेते और तेतीस पक्ष बाद श्वासोच्छवास ग्रहण करते थे । उन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था जिससे वे सातवे नरक तक के रुपी पदार्थो को स्पष्ट रुपसे जानते , देखते थे । वे हमेशा तत्व चर्चाओं में ही अपना समय बिताया करते थे । कषायों के मन्द होनेसे वहां उनकी प्रव्रत्ति विषयों की और झुकती ही नहीं थी । वे उस आत्मीय आनन्द का उपभोग करते थे जो असंख्य विषयोंमें भी प्राप्त नहीं हो सकता । यही अहमिन्द्र आगे - के भव में भगवान् धर्मनाथ होगा और अपने दिव्य उपदेश से संसार का कल्याण करेगा ।

(१) वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में किसी समय रत्नपुर नामका एक नगर था उसमें महासेन महाराज राज्य करते थे । उनकी महादेवी का नाम सुब्रता था । यद्यपि महासेन के अन्त:पुर में सैकडो रुपवती स्त्रियां थी तथापि उनका जैसा प्रेंम महादेवी सुब्रता पर था वैसा किन्ही दूसरी स्त्रियों पर नही था । महासेन बहुत ही शुर, वीर और रणधीर राजा थे । उन्होंने अपने बाहुबल से बडे बडे शत्रुओं के दांत खटट्े कर अपने राज्यको बहुत ही सुविशाल और सुदृढ बना लिया था । मन्त्रियों के ऊपर राज्य भार छोडकर वे एक तरहसे निश्चिन्त ही रहते थे ।

महादेवी सुब्रता की अवस्था दिन प्रतिदिन बीतती जाती थी । पर उसके कोई सन्तान नहीं होती थी । एक दिन उसपर ज्योंही राजा की दृष्टि पडी त्योंही उन्हें पुत्र की चिन्ताने - धर दबाया । वे सोचने लगे कि जिनके पुत्र नहीं है संसार में उनका जीवन नि:सार है । पुत्र के अंग स्पर्श से जो सुख होता है उसकी सोलहवी कलाको भी चन्द्र, चन्दन , हिम हारयष्टि , मलयानिल का स्पर्श नहीं पा सकता । जिस

तरह असंख्यात ताराओं से भरा हुआ आकाश भी एक चन्द्रमा के बिना शोभा नहीं पाता है उसी तरह अनेक मनुष्योंसे भरा हुआ यह मेरा अन्त:पुर भी पुत्र केबिना शोभा नही पा रहा है ।

क्या करुं ? कहां जाऊं ? किससे पुत्र की याचना करुं , इस तरह सोचते हुए राजा का चित्त किसी भी तरह निश्चल नहीं हो सका । उनका बदन स्याह हो गया और मुंह से नि:श्वास निकलने लगी । सच है संसारमें सर्वसुखी होना सुदुर्लभ है । राजा पुत्र चिन्ता में दुखी हो रहे थे कि इतनेमें बनमाली ने अनेक फल- फूल भेंट करते हुए कहा महाराज ! उद्यान में प्राचेतस नामके महर्षि आये हुए है । उनके साथ अनेक मुनिराज है जो उनकेशिष्य मालूम होते है । उन सबके समागमसे बनकी शोभा अपूर्व ही हो गई है । एक साथ छहों ऋतुओंने बनधारामें शोभा प्रकट कर दी है और सिंह , व्याघ्र, हाथी आदि जीव परस्परका विरोध छोडकर प्रेमसे हिल -मिल रहे है । बनमें मुनिराज का आगमन सुनकर राजाको इतना हर्ष हुआ कि वह शरीर में नहीं समा सका और आंसुओं केछलसे बाहिर निकल पडा । उसने -उसी समय सिंहासनसे उठकर मुनिराज केलिये परोक्ष प्रणाम किया तथा बनमाली को उचित पारितोषिक देकर बिदा किया । फिर समस्त परिवारके साथ मुनि बन्दनाके लिये बनमें गया । वहां उसने भक्तिपूर्वक साष्टांग नमस्कार कर प्राचेतस महर्षिसे धर्म का स्वरुप सुना , जीव, अजीव आदि पदार्थो का व्याख्यान सुना और फिर उनसे सुब्रता केपुत्र नही होने का कारण पूछा । मुनिराज प्राचेतसने
अपने अवधिज्ञान से सब हाल जानकर कहा - राजन् ! पुत्रके अभाव में इस तरह दु:खी मत होओ । आपकी इस सुब्रता महारानी केगर्भ से पन्द्रह माह के- बाद जगद्बन्द्य परमेश्वर धर्मनाथ का जन्म होगा जो अपना , तुम्हारा नहीं , सारे संसार का कल्याण करेगा ।

मुनिराज केबचनों से प्रसन्न होकर राजाने फिर पूछा महाराज ! उस जीवने - किस भव में किस तरह और कैसा पुण्य किया था । जिससे वह इतने विशाल तीर्थकर पद को प्राप्त होने वाला है ? मै उसके पूर्वभव सुनना चाहता हुं । तब प्राचेतस महर्षि ने अपने - अवधिज्ञान रुपी नेत्र से देखकर उस केपहले के दो भवों का वर्णन किया जो पहले लिखे जा चुकेहै राजा मुनिराज को नमस्कार कर परिवार सहित अपने घर लौट आया । उसी दिनसे राजभवनमें रत्नों की वर्षा होनी शुरु हो गई इन्द्र की आज्ञा पाकर अनेक दिक्कुमारियां रानी सुब्रता की सेवा केलिये -आ गई जिससे राजा को मुनिराज केबचनों पर दृढ विश्वास हो -गया । देव कुमारियों ने - अन्त:पुरमें जाकर रानी सुब्रता की इस तरह सेवा की कि उसका छह मास का समय क्षण एक की तरह निकल गया । वैशाख शुक्ल १३ केदिन रेवती नक्षत्रमें रानीने १६ स्वप्न देखे, उसी समय उक्त अहमिन्द्र ने सर्वार्थ सिध्दि केसुरम्य विमान से सम्बन्ध तोडकर उस केगर्भमें प्रवेश किया । सबेरा होते ही रानी ने पतिदेव महासेन महाराज से स्वप्नों का फल पूछा । उन्होंने भी एक एक कर स्वप्नों का फल बतलाते -हुए कहा कि ये सब तुम्हारे भावी पुत्र केअभ्युदय केसूचक है । उसी समय देवोंने आकर गर्भ - कल्याण का उत्सव किया और स्वर्ग से लाये हुए वस्त्र - आभूषणों से राजा रानी का खुब सत्कार किया । नौ माह बीत ने पर पुष्य नक्षत्र में महारानी सुब्रताने तीन ज्ञानसे युक्त पुत्र उत्पन्न

किया । उसी समय देवों न मेरु पर्वत पर ले जाकर बालक का क्षीर - सागरके जलसे कलशाभिषेक किया । अभिषेक विधि समाप्त होने पर इन्द्रानीने कोमल धवल वस्त्रसे शरीर पोंछकर उसमें बालोचित आभूषण पहिनाये । इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें उनकी स्तुति की और धर्मनाथ नाम रक्खा । मेरु पर्वत से लौटकर इन्द्रने भगवान् धर्मनाथको माता सुब्रताके पास भेज दिया और स्वयं नृत्य संगीत आदि से जन्म का उत्सव मनाकर परिवार सहित स्वर्गको चला गया राज्य परिवारमें भगवान् धर्मनाथ का बडे प्रेम से - लालन पालन होने लगा ।

धीरे धीरे शिशु अवस्था पार कर वे कुमार अवस्था में पहुंचे । उन्हें पूर्वभवके संस्कार से बिना किसी गुरुके पास पढे हुए ही समस्त विद्यायें प्राप्त हो गई थी । अल्पवयस्क भगवान् धर्मनाथ के अद्‌भुत पाण्डित्य देखकर अच्छे अच्छे विद्वानों के दिमाग चकरा जाते थे । जब धर्मनाथ स्वामी ने युवावस्था में पदार्पण किया तब उनकी नैसर्गिक शोभा और भी अधिक बढ गई थी । अर्ध्दचन्द्र के समान विस्तृत ललाट , कमल दलसी आंखे , तोता सा नाक, मोती से दांत , पूर्णचन्द्रमा मुख , शंखसा कण्ठ , मेरु कटकसा वक्ष:स्थल हाथीकी सूंडसी भुजायें , स्थूल कन्धे, गहरी नाभि सुविस्तृत नितम्ब, सुदृढ ऊरुं , गतिशील जंघाएं और आरक्त चरण कमल । उनके शरीर के सभी अवयव अपूर्व शोभा धारण कर रहे थे । अनकी आवाज नूतन जलधर की सुरम्य गर्जना के समान सज्जन मयूरोंको सहसा उत्कण्ठित कर देती थी । अब वे राज्य कार्यमें भी पिता को मदद पहुंचाने लगे । एक दिन महाराज महासेनने उन्हें युवराज बनाकर राज्य का बहुत कुछ भार उनको सुपूर्द कर दिया जिससे उनके कन्धोंको बहुत कुछ आराम मिला था । किसी समय राजा महासेन राज सभा में बैठे हुए थे । उन्हींके पास में युवराज धर्मनाथ जी विराजमान थे । मन्त्री , पुरोहित तथा अन्य सभासद भी अपने अपने योग्य स्थानोंपर बैठे हुए थे । उसी समय द्वारपाल के साथ विदर्भ देशके कुण्डिनपुर नगर के राजा प्रताप राजका दूत सभामें आया और महाराजको सविनय नमस्कार कर उचित स्थान पर बैठ गया । राजा ने उससे आने का करण पूछा तब उसने हाथ जोड कर कहा कि महाराज ! विदर्भ देश कुण्डिनपुरके राजा प्रतापराजने अपनी लडकी श्रृंगारवती का स्वयम्बर रचने का निश्चय किया है । कहकर उसने एक चित्रपट राजाके सामने रख दिया । ज्योंही राजा की दृष्टि इस चित्रपट पर पडी ज्योही शृंगार वतीका रुप देखकर वे चकित रह गये । उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया कि यह कन्या सर्वथा धर्मनाथके योग्य है । पर उन्होंने युवराज का अभिप्राय जानने के लिये उनकी ओर दृष्टि डाली । युवराजने भी मन्द मुसकान से पिता के विचारों का समर्थन कर दिया । फिर क्या था ? राजा महासेनने दूतका सत्कार कर उसे विदा किया और युवराज को - असंख्य सेनाके साथ कुण्डिनपुर भेजा । युवराज का एक घनिष्ट मित्र प्रभाकर था जो स्यंबर यात्रा के समय उन्हींके साथ था । मार्गमें जब से बिन्ध्याचल पर पहुंचे तब प्रभाकरने मनोहर शब्दोमें उसका वर्णन किया । वहीं एक किन्नरेन्द्र ने अपनी नगरीमें लेजाकर युवराजका सन्मान किया । उनके साथ की समस्त सेना उस दिन वहीं पर सुखसे रह आई ।

भगवान् धर्मनाथ के प्रभाव से वहां बनमें एक साथ छहो ऋतुएं प्रकट हो गई थी । जिससे सैनिकोंने तरह तरह की क्रीडाओंसे मार्गश्रम थकावट दूर की । वहां से चलकर कुछ दिन बाद जब वे कुण्डिनपुर पहुंचे तब वहांके राजा प्रताप राजने प्रतिष्ठित मनुष्योंके साथ आकर युवराजका खूब सत्कार किया और बडा हर्ष प्रकट किया ।

प्रतापराज ने युवराज को एक विशाल भवलमें ठहराया । उनके पहुंचनेसे कुण्डनपुर की सजावट खूब की गई थी । धीरे धीरे अनेक राजकुमार आ आकर कुण्डिनपुरमें जमा हो गये । किसी दिन निश्चित समय पर स्वयम्बर सभा सजाई गई । उनमें चारों और ऊंचे ऊंचे सिंहासनोंपर राजकुमार बैठाये गये । युवराज धर्मनाथ ने भी प्रभाकर मित्रके साथ एक ऊंचे - आसनको अलंकृत किया । कुछ देर बाद कुमारी श्रृंगारवती हस्तिनी पर बैठकर स्वयम्बर मण्डप - में आई । उनके साथ अनेक सहेलियां भी थी । सुभद्रा नामकी प्रतिहारी एक एक कर समस्त राजकुमारी का परिचय सुनाती जाती थी । पर श्रृंगारवती की दृष्टि किसीपर भी स्थिर नहीं हुई अन्त में युवराज धर्मनाथ के पास पहुंचनेपर सुभद्राने कहा -कुमारि ! उत्तर कोशल देशमें रत्नपुर नामका एक सुन्दर नगर है उसमें महाराज महासेन राज्य करते है । उनकी महारानी का नाम सुब्रता है ये युवराज उन्हींके पुत्र है इनका भगवान धर्मनाथ नाम है । इनके जन्म होने के पन्द्रह माह पहले से देवोंने रत्न वर्षा की थी । इस समय भारतवर्ष में इन जैसा पुण्यात्मा दूसरा पुरुष नहीं है । प्रतिहारीके मुंहसे युवराज की प्रशंसा सुन और उनके दिव्य सौन्दर्य पर मोहित होकर कुमारी श्रृंगारवतीने लज्जासे कांपते हुए हाथमें उनके गलेमें वर माला डाल दी । उसी समय सब ओरसे साधु साधु की आवाज आने लगी । महाराज प्रतापराज युवराज को विवाह वेदिका पर ले गये और वहां उनकेसाथ विधिपूर्वक श्रृंगारवती का विवाह करा दिया ।

शादी के दूसरे दिन भगवान् धर्मनाथ ससुराल में किसी ऊंचे आसनपर बैठे हुए थे । इतनेमें पिता महासेन का एक दूत पत्र लेकर उनके पास आया । पत्र पढकर उन्हों ने प्रतापराज से कहा - कि पिताजीने मुझे आवश्यक कार्यवश शीघ्र ही बुलाया है इसलिये जाने की आज्ञा दे दीजिये । प्रतापराज उन्हें जानेसे न रोक सके । युवराज धर्मनाथ समस्त सेना का भार सेनापति पर छोड कर श्रृंगारवती के साथ देवनिर्मित पुष्पक विमानपर आरुढ होकर शीघ्र ही रत्नपूर वापिस आ गये । वहां महाराज माहसेन ने पुत्र - वधू का खूब सत्कार किया । किसी दिन राजा महासेन संसारसे विरक्त होकर राज्य का समस्त भर धर्मनाथ पर छोड कर दीक्षित हो गये । देवों ने राज्याभिषेक कर धर्मनाथ का राजा होना घोषित कर दिया ।

राज्य प्राप्ति के समय उनकी आयु ढाई लाख वर्षकी थी । राज्य पाकर उन्हेंाने - नीतिपूर्वक प्रजा का पालन किया जिससे उनकी कीर्ति - वाहिनी सहस्त्र धारा हो सब ओर फैल गई । इस तरह राज्य करते हुए जब उनके पांच लाख वर्ष बीत गये । तब एक दिन रात के समय उल्कापात देख कर उनका चित्त विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया । उन्होंने सोचा कि मै नित्य समझ कर जिन पदार्थोमें आसक्त हो

सकता हूं वे सब इसी उल्का की तरह भंगुर है नाशशील है । इसलिये उन्हें छोडकर अविनाशी मोक्षपद प्राप्त करना चाहिए । उसी समय लौकान्तिक देव आये और उन्होने भी उनके विचारो का समर्थन किया । जिससे - उनका वैराग्य और भी अधिक बढ गया । निदान , वे सुधर्म नामक ज्येष्ठ पुत्रके लिये - राज्य देकर देवनिर्मित नागदत्ता पालकीपर सवार हो शाल वनमें पहुंचे और वहां माघ शुक्ला त्रयोदशीके - दिन पुष्य नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये । उन्हें दीक्षित होते - ही मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । देव लोग दीक्षा - कल्याणक का उत्सव मनाकर अपने अपने - स्थानोंपर वापिस चले गये । मुनिराज धर्मनाथ तीन दिनके बाद आहार लेनेके लिये पाटलिपुत्र॑ पटना॒ गये । वहां धन्यसेन राजाने उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान से प्रभावित होकर देवोंने धन्यसेनके घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये । धर्मनाथ आहार लेकर बनमें - लौट आये - और आत्मध्यान में अविचल हो गये । इस तरह एक वर्ष तक

तपश्चरण करते हुए उन्होंने - कई नगरोंमें विहार किया । वे दीक्षा लेने के बाद मौन पूर्वक रहते थे । एक वर्षकी छद्मस्थ अवस्था बीत जानेपर उन्हें उसी शाल बन में सप्तच्छद वृक्षके नीचे पौष शुक्ला पौर्णमासी के दिन केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय देवोंने आकर कैवल्य प्राप्तिका उत्सव किया । इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुवेरने दिव्यसभा समवसरण की रचना

कि उसके मध्यमें - सिंहासन पर विराजमान होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया । दिव्य वनि के द्वारा जीव अजीव आदि तत्वों का व्याख्यान किया और संसारके दु:खों का वर्णन किया जिसे सुनकर अनेक नर-नारियों ने मुनि आर्यिकाओं और श्रावक श्राविकाओंके ब्रत धारण किये थे । प्रथम उपदेशके बाद इन्द्र ने विहार करनेकी प्रार्थना की । तब उन्होंने प्राय: समस्त आर्य क्षत्रोंमें विहार कर जैनधर्म का खुब प्रचार प्रसार किया । उनके समवसरण में अरिष्टसेन आदि ४३ गणधर थे ६११ अंग और १४ पूर्वोके जानकार थे, चालीस हजार सात सौ शिक्षक थे , तीन हजार छह सौ - अवधिज्ञानी थे, चार हजार पांच सौ केवली थे , सात हजार विक्रिया ऋध्दिके धारक थे , चार हजार पांच सौ मन:पर्यय ज्ञानी थे, और दो हजार आठ सौ वादी थे, इस तरह सब मिलाकर चौसठ हजार मुनिराज थे । सुब्रता आदि बासठ हजार चार सौ आर्यिकायें थी ।

दो लाख श्रावक , चार लाख श्राविकायें , असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यच थे । वे आयु के अन्तमें सम्मेद शिखर पर पहुंचे और वहां आठ सौ मुनियोंके साथ योग निरोध कर ध्यानारुढ हो बैठ गये । उसी समय शुक्लध्यानके प्रतापसे अघातिया कर्मो का संहार कर जैष्ठ शुक्ला चतुर्थीके दिन नक्षत्रमें उन्होंने स्वातन्त्र्य लाभ किया । तत्काल देवोंने आकर उनके निवार्ण क्षेत्र की पूजा की । श्रीअनन्तनाथ तीर्थकर के मोक्ष जाने के बाद चार सागर बीत जानेपर भगवान धर्मनाथ हुअे थे । इनकी आयु भी इसी प्रमाण में शामिल है । इनकी पूर्णायु दस लाख वर्षकी थी । शरीर ४५ योजन ऊंचा था और रंग पीला

था । इनकी उत्पत्ति के पहले भारतवर्ष में आधे पल्य तक धर्मका विच्छेद हो गया था पर इनके उपदेश से वह सब दूर हो गया था और जैनधर्म - कल्पवृक्ष पुन:लह लहा उठा था ।

ॐ

भगवान शान्तिनाथ

स्वदोष शान्त्याविहितात्म शान्ति: शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद् भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्य : ।।

- आचार्य समन्तभद्र

अपने राग द्वेष आदि दोषों के दूर करनेसे शान्ति को धारक करने वाले शरणमें आये हुए प्राणियों के शान्ति के विधाता और शरणागतों की रक्षा करने में करनें में - धुरीण भगवान् शान्तिनाथ हमारे संसार सम्बन्धी क्लेश और भवों की शान्ति के लिये होंवें । हमारे सांसारिक दु:ख नष्ट करें ।

ं पूर्वभव परिचय

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देशकी पुण्डीकिणी नगरी में किसी समय धनरथ नामका राजा राज्य करता था । उसकी महारानी का नाम मनोहरा था । उन दोनोंके मेघरथ और दृढरथ नामके दो पुत्र थे । उन में मेघरथ बडा और दृढरथ छोटा भाई था । वे दोनों भाई एक दूसरेसे बहूत प्यार करते थे , एकके बिना दूसरे को अच्छा नहीं लगता था । वे सूर्य और चन्द्रमा की तरह शोभित होते थे । उन दोनोंके पराकम बुध्दि, विनय, प्रताप , क्षमा, सत्य तथा त्याग आदि अनेक गुण स्वभावसे ही प्रकट हुए थे ।

जब दोनों भाई पूर्ण तरुण हो गये तब महाराज धनरथने बडे पुत्र मेघरथ का विवाह प्रियमित्र और मनोरमा के साथ तथ दृढरथका सुमति के साथ किया । नव वधुओंके साथ अनेक क्रीडा कौतुक करते हुए दोनों भाई अपना समय सुखसे बिताने लगे । पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि इनमेंसे बडा भाई मेघरथ इस भव से तीसरे भवमें भगवान शान्तिनाथ होकर संसार का कल्याण करेगा और छोटा भाई दृढ रथ तीसरे भव में चक्रयुध नाम का उसी का भाई होगा जो की श्री शांतिनाथ का गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ।

कुछ समय बाद मेघरथ की प्रियमित्र भार्यासे नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ और दृढरथ की सुमति देवीसे वरसेन नाम का पुत्र हुआ । इस प्रकार पुत्र - पौत्र आदि सुख सामग्रीसे राजा धनरथ इन्द्रकी तरह शोभायमान होत थे । एक दिन महाराज धनरथ राजसभा में बैठे हुए थे , उनके दोनों - पुत्र भी उन्हीके पास बैठे थे कि इतनेमें प्रियमित्रकी सुषेणा नामकी दासी एक धनतुंड नामका मुर्गा लाई और राजासे कहने लगी कि जिसका मुर्गा इसे लडाईमें जीत लेगा मैं उसे एक हजार दीनार दूंगी । यह

सुनकर दृढ रथ की स्त्री सुमत की कांचना नामकी दासी उसके साथ लडाने - के लिये एक बज्रतुण्ड नाम का मुर्गा लाई । धनतुण्ड और बज्र तुण्डमें खुलकर लडाई होने - लगी ।

कभी सुषेणा का मुर्गा कांचना के मुर्गा को पीछे हटा देता और कभी कांचना का सुषेणाके मुर्गेका पीछे हटा देता था । जिससे दोनों दलके मनुष्य बारी बारीसे हर्षकी तालियां पीटते थे । दोनों मुर्गाओं के बलवीर्य से चकित होकर राजा धनरथ ने मेघरथ से पूछा कि इन मुर्गाओं में यह बल कहांसे आया ? राजकुमार मेघरथ को अवधिज्ञान था इसलिये वह शीघ्र ही सोचकर पिता के प्रश्न का नीचे लिखे उत्तर देने लगा - इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में रत्नपूर एक नगर है उसमें समय भद्र और धन्य नाम के दो सहोदर सगे भाई रहते थे । वे दोनों गाडी चलाकर अपना पेट पालते थे । एक दिन उन दोनोंमें श्रीनदी के किनारे एक बैलके लिये लडाई हो पडी जिसमें वे दोनों ऐ दूसरे को मारकर कांचन नदीके किनारे श्वेतकर्ण और नामकर्ण नामके जंगली हाथी हुए । वहां भी वे दोनों पूर्वभव के वैरसे आपसमें लडकर मर गये जिससे अयोध्या नगरमें -किसी नन्दिमित्रा ग्वालाके घर पर उन्मत्त भैसे हुए । वहां भी दोनों लडकर मर गये । मर कर उसी नगरमें शक्तिवरसेन और शब्दवरसेन नामक राजकुमारों के यहां मेढे हुए । वहां भी दोनों लडकर मरे और मर कर ये मुर्गे हुए है । ये दोनों पूर्वभवके बैरसे ही आपसमें लड रहे है । उसी समय दो विद्याधर आकर उन मुर्गाओं का युध्द देखने लगे । तब राजा धनरथने पूछा ये लोग कौन है ? और यहां कैसे आये है ? तब मेघरथने कहा कि महाराज । सुनिये जम्बूद्वीपने भरते क्षेत्र में जो विजयार्ध पर्वत है उसकी उत्तर श्रेणीमें एक कनकपुर नामका नगर है । उसमें गरुडवेग विद्याधर राज करता था । उसकी रानी का नाम घृतिषेणा था । उन दोनोंके दिषितिलक और चन्द्रतिलक नाम के दो पुत्र थे । एक दिन वे दोनों भाई सिध्दकूटकी बन्दना के लिये गये वही उन्हे दो चार ऋध्दिधारी मुनियों के दर्शन हुए । विद्याधर पुत्रोंने नियसहित नमस्कार कर उनसे अपने

पूर्वभव पूछे । तब उनमेंसे एक मुनिराजने कहा कि पहले पूर्वघात की खण्डद्वीपके ऐरावतं क्षेत्रमें स्थित तिलकपुर नामके नगरमें एक अभयघोष राजा राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम सुवर्णतिलक था । तुम दोनों अपने पूर्वभव में उन्हीं राजदम्पति के विजय और जयन्त नामके पुत्र थे । कारण पाकर तुम्हारे पिता अभयघोष संसार से विरक्त होकर मुनि होकर उन्होंने कठिन तपस्या की और सोलह कारण भवनाओं का चिन्तवन कर तीर्थकर बन्ध किया । फिर आयु के अन्तमें मरकर सोलहवें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र हुआ हैं तुम दोनों विजय और जयन्त भी आयुके अन्तसे जीर्ण शरीर को छोडकर ये दिवितिलक और चन्द्रतिलक विद्याधर हुए हो । तुम्हारे पूर्वभवके पिता अभयघोष स्वर्ग से चयकर पुण्डरीकिणी नगरी में राजा हेमांगद और रानी मेघमालिनीके धनरथ नामके पुत्र हुए है । वे इस समय अपने - पुत्र - पौत्रोंके साथ मुर्गाओंका युध्द देख रहे हैं । इस तरह मुनिराजके मुखसे आप के साथ अपने - पूर्वभवों का सम्बन्ध सुनकर ये दोनों विद्याधर आपसे मिलने के लिये आये है । मेघरथ के वचन सुनकर धनरथ तथा समस्त सभासद अत्यन्त प्रसन्न हुए । उसी समय दोनों विद्याधरोंने - राजा धनरथ और राजकुमार मेघरथका

खूब सत्कार किया । दोनों मुर्गोने भी अपने पूर्वभव सुनकर परस्पर का वैरभाव छोड दिया । और सन्यास पूर्वक मरण किया जिससे भूत रमण नामकेबन में एक ताम्रचुल नामका देव हुआ और दूसरा देव रमण नामकेबनमें कनकचूल नामका व्यनतर देव हुआ । वहां जब उन देवों ने अवधि ज्ञानसे अपने पूर्वभवों का विचार किया तब उन्होंने शीघ्र ही पुण्डरीकिणीपुरी आकर राजकुमार मेंघरथ का खुब सत्कार किया और अपने पूर्वभवोंका सम्बन्ध बतलाया । इस केबाद उन व्यन्तर देवोंने कहा कि राजकुमार ! आपने हमारे साथ जो उपकार किया है हम उसका बदला नही चुका सकते । पर हम यह चाहते है कि आपलोग हमारे साथ चल कर मानुषोत्तर पर्वत तककी यात्रा कर लीजिये राजकुमार मेघरथ तथा महाराज धनरथकी आज्ञा मिलने पर देवोंने सुन्दर विमान बनाया

और उसमें समस्त परिवार सहित राजकुमार मेघरथको बैठाकर उसक आकाशमें ले - गये । वे देव उन्हें क्रम - क्रम से भरत हैमवत आदि क्षत्रों गंगा सिन्धु आदि नदियों, हिमवन मेरु आदि पर्वत पर ले गये । कुमार मेघरथ प्रकृतिकी अद्‌भूत शोभा देखकर बहुत हि प्रसन्न हुआ, असने समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों की बन्दना की , स्तुति की और फिर उन्हीं देवों की सहायतासे अपने नगर पुण्डरीकिणीपुर को लौट आया ।

घर आनेपर देवोंने उसे अनेक वस्त्राभूषण , मणिमालायें आदि भेंट की और - फिर अपने अपने स्थानों पर चले गये । किसी एक दिन कारण पाकर महाराज धनरथ का हृदय विषयवासनाओं से विरक्त हो गया । उन्होंने बारह भावनाओं का चिन्तवन कर अपने - वैराग्य को और भी अधिक बढा लिया । लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा लेनेका समर्थन किया । निदान महाराज धनरथ युवराज मेघरथ को राज्य दे बन में जाकर दीक्षित हो गये । इधर कुमार मेघरथने भी अनेक साधु उपायोंसे प्रजाका पालन शुरु कर दिया जिससे - समस्त प्रजा उसपर अत्यन्त मुग्ध हो गई । किसी एक दिन राजा मेघरथ अपनी स्त्रियोंकेसाथ देव रमण नामकेबनमें घूमता हुआ एक चन्द्रकान्त शिला पर बैठ गया । जहां वह बैठा था वहीं पर आकाशमें एक विद्याधर जा रहा था । जब उसका विमान मेघरथ के ऊपर पहुंचा तब वहा सहसा रुक गया । विद्याधर ने विमान रुकने का कारण जानने केलिये सब ओर दृष्टि डाली । ज्योंही उसकी दृष्टि मेघरथ पर पडी त्योंही क्रोधसे आगबबूला हो गया । वह झट से नीचे उतरा और शिला को जिसपर कि मेधरथ बैठा हुआ था, उठानेका प्रयत्न करने लगा । परन्तु राजा मेघरथ ने उस शिला को अपने पैरकेअगुंठेसे दबा दिया जिससे वह विद्याधर शिलाका भारी बोझ नहीं सह सका । अन्तमें वह जोरसे चिल्ला उठा उसकी आवाज सुनकर उसकी स्त्रीने विमान से उतर कर मेघरथ से पति की भिक्षा मांगी । तब उसने भी पैरका अंगूठा उठा लिया जिससे विद्याधर की जान बच गई ।

यह हाल देखकर मेघरथ की स्त्री प्रियमित्रने उससे पूछा । यह सब क्या और क्यों हो रहा है तब मेघरथ कहनें लगा लगा प्रिये ! यह विजयार्ध पर्वत की अलकानगरी केराजा विधुइष्ट्ं और रानी

अनिलवेगा का प्यारा पुत्र सिंहरथ नामका विद्याधर है । इधर अमितवाहन तीर्थकर की वन्दनाकर आया है । जब इसका विमान मेरे ऊपर आया तब वह कीलित हुए कि तरह आकाश में रुक गया । जब उसने सब ओर देख तब मैं ही दिखा दिया , इसलिये मुझे - ही विमान का रोकनेवाला समझ कर वह क्रोध से आगबबूला हो गया और इस शिलाको जिसपर हम सब बैठे हुए हैं उठाने का प्रयत्न करने लगा तब मैने पेरके अंगूठे से शिला को दबा दिया जिससे वह चिल्लाने लगा । उसकी चिल्लाहट सुनकर यह उसकी स्त्री आई और इतना कह कर मेघरथ ने उस सिंहरथ विद्याधर के पूर्वभव कह सुनाये जिससे वह पानी पानी हो गया ओर पास - जाकर राजा मेघरथ की खूब प्रशंसा करने लगा तथा सुवर्ण तिलक नामक पुत्र के लिये राज्य देकर दीक्षित हो गया । उसकी स्त्री मदनवोगा भी आर्यिका हो गई राज मेघरथ भी देव रमण बनसे - राजधानी मैं लौट आये और नीतिपूर्वक प्रजा पालन करने लगे ।

एक दिन वह अण्ठान्हि का ब्रतकी पूजा कर उपवास की प्रतिज्ञा लिये हुए स्त्री-पुत्रोंके साथ बैठकर धर्म चर्चा कर रहा था कि इतने में उसके सामने भयसे कांपता हुआ एक कबूतर आया ,। कबूतरके पीछे पीछे बडे बेगसे दौडता हुआ एक गीध आया और राजाके सामने खडे होकर कहने लगा - कि महाराज ! मै भूखसे मर रहा हुं आप दानवीर है । इसलिये कृपाकर आप यह कबूतर मुझे दे दीजिये । नहीं तो मै मर जाऊंगा ।

गीध केवचन सुनकर दृढरथ मेघरथ का छोटा भाई को बडा अश्चर्य हुआ । उसने - उसी समय राजा मेघरथ से पूछा कि महाराज ! कहिये , यह गीध मनुष्यों की बोली क्यों बोल रहा है अनुज छोटे भाईका प्रश्न सुनकर मेघरथने काहा कि जम्बू द्वीप के ऐरावत क्षेत्रमें पद्मिनी खेट नामके नगर में एक सागरसेन नामका वैश्य रहता था उसकी अमितमति स्त्रीसे धनमित्र और नन्दिषेण नामके दो पुत्र हुए थे । वे दोनों धनके लोभसे लडे और एक दूसरेको मार करे ये - गीध और कबूतर हुए है औरयह गीध मनुष्य की बोली नहीं बोल रहा है किन्तु इसके- ऊपर एक ज्योतिषी देव है । यह आप किसी कारणवश ईशान इन्द्रकी सभा में गया था वहांपर इन्द्रके मुखसे हमारी प्रशंसा सुनकर इसे कुछ ईर्षा पैदा हुई जिससे यह मेरी परीक्षा लेनेके लिये - यहां आया है और गीध के मुंहसे मनुष्यकी बोली बोल रहा है । दृढरथसे इतना कहकर राजा मेघरथने उस देवसे कहा - भाई ! तुम दानके स्वरुपसे सर्वथा अपरिचित मालूम होते हो । इसीलिये मुझसे गीधके लिये कबूतर की याचना कर रहे हो । सुनो , अनुग्रहार्थ स्वस्याति सर्गोदानम् निज तथा परके उपकार के लिये अपनी योग्य वस्तुका त्याग करना दान कहलाता और वह सत्पात्र में ही दिया जाता है । सत्पा उत्तम- मुनिराज , यम - श्रावक और जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टिके भेदसे तीन तरहके होते है । देय पदार्थ भी मद्य मांस मधुसे विवर्जित तथा सात्विक हो । अब कहो यह गीध उनमें से कौनसा सत्पात्र है ? और यह कबूतर भी क्या देय वस्तु है ? राजा मेघरथके वचन सुनकर वह देव अपने असली रुपंमें प्रकट हुआ और उनकी स्तुति कर अपने स्थापनपर वापिस चला गया । कबूतर और गीधने भी मेघरथ की बातें सुनकर आपस का विरोध छोड दिया जिस से आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक मर कर

वे दोनों देवरमण वनमें व्यन्तर हुए । उत्पन्न होते ही उन देवोंने आकर राजा मेघरथ की बहुत ही स्तुति की और अपनी कृतज्ञता प्रकट की ।

एक दिन उसने किन्ही चारण ऋध्दिधारी मुनिराज को आहार दिया जिससे उसके- घरपर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये । किसी दूसरे दिन वह अष्टान्हिका पर्वमें महापूजा कर और उपवास धारण कर रात्रि में प्रतिमा योगसे विराजमान था । उसी समय ईशानेन्द्रने मेघरथ कि सब बातें जानकर अपनी सभा में उसकी धीर-बीरता की खुब प्रशंसा की । इन्द्रके मुख से मेघरथ की प्रशंसा सुनकर कोई अतिरुपा और सुरुपा नामकी दो देवियां परीक्षा करनेके- लिये- आयी और हावभाव विलास पूर्वक नृत्य करने लगी पर जब वे मेघरथको ध्यानसे - विचलित न कर सकी तब उन्होंने देवी रुपमें प्रकट होकर उसकी खुब प्रंशंसा की और स्वर्गको - चली गई । किसी दिन उसी इन्द्रने अपनी सभा में मेघरथ की स्त्री प्रियमित्राके सौन्दर्य की प्रशंसा की । उसे सुनकर रतिषेण और रति नामकी दो देवियां उसकी परीक्षा करनेके लिये आयी । जब देवियां उसके महल पर पहुंची तब वह तेल, उबटन लगाकर स्नान कर रही थी । फिर उन देवियों ने छिपकर उसका रुप देखा और मनमें प्रशंसा करने लगी । उन देवियोंने - कन्याओंका भेष धारणकर स्त्री पहरेदारके द्वारा उसके पास सन्देश भेजा कि दो कन्याएं आप की सोन्दर्य सुधाका पान करना चाहती है । उत्तर में रानीने कहला भेजा की तबतक ठहरो जबतक मैं स्नान न कर लूं । प्रियमित्रा स्नानकर उत्तमोत्तम वस्त्र और अलंकार पहनकर मिलनेके स्थान में पहुंची और कन्याओंको आने की खबर दी । खबर पाते ही दोनों कन्याएं भीतर पहुंची और रानी प्रियमित्र का रुप देखकर एक दूसरे की ओर देखने लगी । जब उनसे कारण पूछा गया तब वे दोनों बोली महादेवि ! नहाते समय हम लोगोंने आपमें जो असीम सौन्दर्य देखा था अब उसका पता नही है । कन्याओंकी बात सुनकर प्रियमित्रा ने राजा मेघरथ की ओर देखा । तब उसने भी कहा कि हां, पहले की अपेक्षा तुम्हारे रुपमें अवश्य कमी हो गयी है । पर बहुत ही सुक्ष्म । इसके बाद दोनों कन्याओंने देवी वेष में प्रकट होकर सब रहस्य प्रकट कर दिया और उसके रुपकी प्रशंसा करती हुई वे स्वर्ग को वापिस चली गई । अपने रुपमें कमी सुनकर प्रियमित्रा को बहुत दु:ख हुआ पर राजा मेघरथने मीठे शब्दोंमें उसका वह दु:ख दूर कर दिया । उसी देशमें खर्च किया था ।

उसमें एक हस्तिनापुर नाम की नगरी है । वह परिखा, प्राकार ,कूप, सरोवर आदिसे बहुत ही भली मालूम होती थी । उसमें उस समय गगनचुम्बी मकान बने हुए थे । जो चन्द्रमाके उदय होनेपर ऐसे मालूम होते थे मानो दूधसे धोये गये हों । वहां की प्रजा धन -धान्यसे सम्पन्न थी । कोई किसी बात के लिये दु:खी नहीं थी । वहां असमयमें कभी किसी की मृत्यु नहीं होती थी । वहां के लोग बडे धर्मात्मा और साधु स्वभावी थें वहां राजा विश्वसेन राज्य करते थे । वे बहुत ही शूरवीर - रणधीर थे । उन्होंने अपने बाहूबलसे समस्त भारतवर्ष के समस्त भारतवर्ष के राजाओंको अपना सेवक बना लिया था । उनकी मुख्य

स्त्रीका नाम ऐरा था । उस समय पृथिवी तलपर ऐराके साथ सुन्दरता में होड लगाने वाली स्त्री दूसरी नहीं थी । दोनों राज्य - पम्पति सुखसे समय बिताते थे ।

ऊपर कहे हुए अहमिन्द्र की आयु जब वहां ं सर्वार्थ सिध्दि में ं सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तबसे राजभवन में प्रतिदिन करोंडो रत्नोंकी वर्षा होने लगी । उसी समय अनेक शुभ शकुन हए और इन्द्रकी आज्ञासे अनेक देवकुमारियां ऐरा रानी की सेवा के लिये आ गई । इन सब कारणों से राजा विश्वसेनको निश्चय हो गया कि हमारे घरपर जगत्पूज्य तीर्थकर का जन्म होगा । अब बडे ही आनन्द से उनका समय बीतने लगा । महारानी ऐराने भाद्रपद कृष्णा सप्तमीके दिन भरणी नक्षत्रमें रात्रिके पिछले समय सोलह स्वप्न देखे और अपने मुंह में प्रवेश करता हुआ एक सुन्दर हाथी देखा । उसी समय मेघरथका जीव अहमिन्द्र सर्वार्थ सिध्दिकी आयु पुरी कर उसके गर्भमें प्रविष्ट हुआ । सवेरा होते ही ऐरा देवीने राजा विश्वसेन से उन स्वप्नोंका फल पूछा । तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थकरने प्रवेश किया है । नव माह बाद उसका जन्म होगा । ये स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे है । पतिके मुख से स्वप्नोंका फल सुनकर रानी ऐराको बहुत ही आनन्द हुआ । उसी समय देवोंने आकर गर्भ कल्याणका उत्सव किया और उत्तमोत्तम वस्त्रा भूषणोंसे राजदम्पति की पूजा की । धीरे धीरे जब गर्भके नौ माह पूर्ण हो गये तब ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्रामें सवेरेके समय ऐराने पुत्र - रत्न उत्पन्न किया । उस पुत्रके प्रभावसे तीनों लोको में आनन्द छा गया । आसनोंके कंम्पनेसे देवोंने तीर्थकर की उत्पत्ति का निश्चय कर लिया और शीघ्र ही समस्त परिवार के साथ हस्तिनापुर आ पहुंचे । वहांसे इन्द्र बालक को ऐरावत हाथीपर बैठाकर मेरु पर्वतपर ले गया और वहां उसने उस सद्य प्रसुत बालक का क्षीर सागर के जल से अभिषेक किया । फिर समस्त देव सेनके साथ हस्तिनापुर वापिस आकर पुत्र को मां की गोद में भेज दिया । राज भवनमें देव देवियां ने मिलकर अनेक उत्सव किये । इन्द्रने आनन्द नामका नाटक किया । उस बालक का नाम भगवान् शान्तिनाथ रखा गया ।

जन्म का उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थानपर चले गये और बालक शान्तिनाथ का राज परिवार में बडे प्रेमसे पालन होने लगा । भगवान धर्मनाथ के बाद पैान पल्य कम तीन सागर बीत जानेपर स्वामी शान्तिनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसी में शामिल है । इनकी आयु एक लाख वर्ष की थी ,शरीर की ऊंचाई चालीस धनुष की थी और कान्ति सुवर्ण के समान पीली थी । इनके शरीर में ध्वजा, छत्रा , शंख , चक्र आदि अच्छे अच्छे चिन्ह थे । क्रम-क्रम से भगवान शान्तिनाथने युवावस्थामें पदार्पण किया । उस समय उनके शरीर का संगठन और अनुपम सौन्दर्य देखते ही बनता था । दृढरथ जो कि राजा मेघरथ का छोटा भाई था और उसीके साथ सपस्या कर सर्वार्थसिध्दि में अहमिन्द्र हुआ था वह राजा विश्वसेन की द्वितीय पत्नी यशस्वती के गर्भ से चक्रायुध नामका पुत्र हुआ । उसकी उत्पत्तिके समयमें भी अनेक उत्सव

मनाये -गये थे । महाराज विश्वसेन ने योग्य अवस्था देखकर अपने दोनों पुत्रोंका कुल ,वय, रुप,शील आदिसे शोभायमान अनेक कन्याओंकेसाथ विवाह करवाया था । जिनकेसाथ वे तरह कौतुक करते - हुए सुखसे समय बिताते थे । इस तरह देवदुर्लभ सुख भोगते हुये जब भगवान् शान्तिनाथ केकुमार कालके पच्चीस हजार वर्ष बीत गये तब महाराज विश्वसेन ने राज्याभिंषेक पूर्वक उन्हें अपना राज्य दे दिया और स्वयं बन में जाकर दीक्षा ले ली ।

इधर भगवान् शान्तिनाथ छोटे भाई चक्रायुध केसाथ प्रजाका पालन करने लगे । कुछ समय बाद उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ जिससे उन्हें अपने आपको चक्रवर्ती होनेका निश्चय हो गया । चक्ररत्न प्रकट होनेकेबाद ही वे असंख्य सेना लेकर दिग्विजय केलिये निकले और क्रम-क्रम से भरत क्षेत्रके छहों खण्डोंकी जीतकर हस्तिनापुर वापिस आ गये । व चौदह रत्न और नौ निधियों केस्वामी थे । समस्त राजा उनकी आज्ञाको फुलोंकी माला समझकर हर्ष पूर्वक अपने मतस्कों पर धारण करते थे । चौदह रत्नोमेसे चक्र, छत्र , तलवार और दण्ड ये चार रत्न आयुधशालामें उत्पन्न हुये थे । काकिणी चर्म , और चूडामणि ये श्रीगृहमें प्रकट हुए थे । पुरोहित , सेनापति, स्थळपति और गृहपति हस्तिनापुरमें ही मिले थे । तथा पट्टरानी हाथी और घोडा विजयार्ध पर्वत से प्राप्त हुए थे । नव निधियां भी पुण्यसे प्रेरित हुये । इन्द्रने इन्हें नदी और सागर केसमागम केस्थान पर दी थी । इस तरह चक्रधर भगवान् शान्तिनाथ पच्चीस हजार
वर्ष तक अनेक सुख भोगते हुये राज्य करते रहे ।

एक दिन वे अलंकार - गृह में बैठकर दर्पणमें अपना मुंह देख रहे थे कि उसमें उन्हें अपने मुंह के दो प्रत्तिबिम्ब दिखाई पडे । मुंह केदो प्रतिबिम्ब देखकर वे आश्चर्य करने लगे - कि यह क्या है ? उसी समय उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया जिससे वे पूर्वभव की समस्त बातें जान गये । उन्होंने सोचा कि मैंने पूर्वभव में मुनि अवस्थामें जो जो कार्य करनेका विचार
किया था । अभी तक उन कार्यो का सुत्रपात भी नहीं किया । मैंने अपनी विशाल आयु सामान्य मनुष्यों की तरह भेाग - विलासों मे फंसकर व्यर्थ ही बिता दी । समास्त विषय सामग्री क्षण - भंगुर है देखते नष्ट हो जाती है इसलिये मोह छोड कर आत्म - कल्याण करना चाहिये इस तरह विचारकर भगवान् शान्तिनाथ अलंकार - घरसे बाहर निकले । उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनके विचारोंका समर्थन किया । जिससे उनका वैराग्यसागर और भी अधिक लहराने लगा उसमें तरल तरंगे उठने लगी । लौकान्तिक देव अपना । कार्य समाप्त कर ब्रहालोक को वापिस चले और वहां से इन्द्र आदि समस्त देव संसार की असारता का दृश्य दिखलात हुअे हास्तिनापूर आये । भगवान् शन्तिनाथ नारायण नामक पुत्रको राज्य देकर सर्वार्थसिध्दि पालकी पर सवार हो -गये । देव लोग पालकी को कन्धोंसे उठाकर सहस्त्राम बन में ले गये । वहां उन्होंने पालकी से उतरकर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थीकेदिन शामकेसमय भरणी नक्षत्र में ओम् नम:सिध्देभ्य कहते - हुए जिन दीक्षा ले ली । सामायिक चरित्रकी विशुध्दता से उन्हें उसी

समय मन:पर्यय ज्ञान हो - गया । उनके साथमें चक्रायुध अदि एक हजार राजाओंने भी दिगम्बर दीक्षा धारण की थी । देव लोग दीक्षा कल्याणक का उत्सव समाप्त कर अपने अपने घर चले गये । तीन दिन बाद मुनिराज शान्तिनाथ ने आहार के लिये मन्दरपुरमें प्रवेश किया । वहां उन्हें सुमित्र राजाने भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्र दानसे प्रभावित होकर देवोंने सुमित्रा महाराज केघर पर रत्नोंकी वर्षा की । आहार लेकर भगवान् शान्तिनाथ पुन: बनमें लौट आये और आत्म-ध्यानमें लीन हो गये । इस तरह उन्होंने छद्मस्थ अवस्था में - सोलह वर्ष बिताये । इन सोलह वर्षो में भी आपनें अनेक जगह बिहार किया और अपनी सौम्य मूर्तिसे सब जगह शांति केझरने बहाये । इसकेअनन्तर आप घुमते - हुए उसी सहस्त्राम्र बनमें आये - और वहां किसी नन्द्यावर्त नामकेपेडकेनीचे तीन दिन उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हो गये । उस समय भी उनकेसाथ चक्रायुध आदि हजार मुनिराज विराजमान थे । उसी समय उनहोंने क्षपण श्रेणी चढकर शुक्ल ध्यान केद्वारा चार धातिया कर्मोका क्षय कर केवल ज्ञान, केवल दर्शन , अनंत सुख ओर अनन्त चतुष्ट य प्राप्त किये । देवोंने आकर कैवल्य प्राप्तिका उत्सव किया और कुवेरने समवसरणकी रचना की । समवसरण केमें विराजमान होकर भगवान् ने अपना मौन भंग किया - दिव्य ध्वनि केद्वारा सप्त तत्व,नव पदार्थ , छह द्रव्य आदि का व्याख्यान किया जिसे सुन समस्त भव्य जीव प्रसन्न हुए । अनेकोंने जिनदीक्षा धारण की । उनकेसमवसरणमें चक्रायुध को आदि लेकर छत्तीस गणधर ये आठ सौ श्रुतकेवली थे, इकतालीस हजार आठ सौ शिक्षक थे, तीन हजार अवधिज्ञानी थे, चार हजार केवलज्ञानी थे, छह हजार विक्रिया ऋध्दि केधारक थे, चार हजार मन:पर्यय ज्ञानी थे, दो हजार चार सौ बादी शास्त्रार्थ करने वाले थे । इस तरह सब मिलाकर बासठ हजार मुनिराज थे, हरिषेणा आदि साठ हजार तीन सौ अर्यिकायें थी सुरकीर्ति आदि दो लाख श्रावक,अर्हद्दासी आदि चार लाख श्राविकायें असंख्यात देव - देवियां और संख्यात विर्थच थे । इनसबके- साथ उन्हेंाने -अनेक देशोंमें बिहार किया और जैन धर्मका खुब प्रचार किया । जब उनकी आयु एक महीने की रह गई तब वे सम्मेद शिखरपर आये और वहां अनेक मुनिराजं केसाथ योग निरोधकर प्रतिमा योगसे विराजमान हो गये । वहीं पर उन्होंने सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति और ब्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्ल ध्यानकेद्वारा अवशिष्ट घातिया कर्मोका संहार कर ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीकेदिन शाम केसमय भरणी नक्षत्रामें मोक्ष लाभ किया । देवोंने आकर उनके- निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की । उसी समय यथाक्रमसे चक्रायुध आदि नौ हजार मुनिराज मुक्त हुए । भगवान शन्तिनाथ, तीर्थकर , कामदेव और चक्रवर्ती पदवियों केधारक थे ।

मत्तगयन्द छन्द

शान्ति जिनेश जयो जगतेश हरे अघ ताप निशेष की नाई ।
सेवत पाय सुरासुर आय न मैं सिर नाथ मही तल तांई ।।
मौलि विषैं मणि नील दिपै प्रभुकेचरणों झलकैं बहु झांई ।
सूंधन पाप - सरोज सुगन्धि किधों चलकेअति पंकति आंई ।।

- भूधरदास

भगवान कुन्थुनाथ

ररक्ष कुन्थु प्रमुखान्हि जीवान् दया प्रतानेन, दयालयो यः ।
स कुन्थुनाथो दयया सनाथः करोतु मां शीघ्र महो सनाथन् ।। -लेखक

दया के आलय स्वरुप जिन कुन्थुनाथने दया के समूह से कुन्थु आदि जीवों की रक्षाकी थी वे दयायुक्त भगवान् कून्थुनाथ मुझ अनाथको शीघ्र ही सनाथ करें ।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदीके दाहिने किनारे पर एक वत्स देश है । उसकी राजधानी सुसीमा नगरी थी । उसमें किसी समय सिंहरथ नामका राजा राज्य करता था । वह बहुत ही बुध्दिमान और पराक्रमी राजा था । उसने अपने बाहुबलसे समस्त शत्रु राजाओंको पराजित कर उन्हें देशसे निकाल दिया था । उसका नाम सुनकर शत्रु थर थर कांपते थे ।

एक दिन राजा सिंहरथ मकान की छतपर बैठा हुआ था कि इतनेमें आक ाशसे उल्का (रेखाकर तेज) पात हुआ । उसे देखकर वह सोचने लगा कि संसारके सब पदार्थ इसी तरह अस्थिर हैं । मै अपनी भूलसे उन्हें स्थिर समझकर उनमें आसक्त हो रहा हूं । यह मोड बडा सघन तिमिर है जिसमें दूरदर्शी आंखे भी काम नहीं कर सकती । और यह वह प्रचण्ड दावानल है जिसकी ऊष्णासे वैराग्य - लताएं झुलस जाती है । इस मोहके कारण ही प्राणी चारों गतियों में तरह तरहके दु:ख भोगते है । अब मुझे इस मोहको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा सोचकर उसने शरीर को सुखा दिया । उक्त मुनिराजके पास रहकर उसने ग्यारह अंगोका अध्ययन किया और दर्शन विशुध्दि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया । आयुके अन्तमें सन्यासपूर्वक शरीर छोडकर मुनिराज सिंहरथ सर्वार्थसिध्दिके विमानमें अहमिन्द्र हुआ । वहां उसे तेंतीस सागरकी आयु प्राप्त हुई थी, उसका शरीर एक हाथ ऊंचा था, शुल्क लेश्या थी । उसे जन्मसे ही अवधिज्ञान था । वह तैंतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार ग्रहण करता और तैतीस पक्ष बाद श्वासोच्छवास लेता था । वहां वह अपना समस्त समय तत्व चर्चा में ही बिताता था । यही अहमिन्द्र आगेके भवमें कथानायक भगवान् कुन्थुनाथ होगा ।

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के भरत क्षैत्रमें कुरुजांगल नामका देश है । उसके हस्तिनापुर नगर में कुरुवंशी और काश्यप गोत्री महाराज शूरसेन राज्य करते थे । उनकी महारानीका नाम था श्रीकान्ता । जब ऊपर कहे हुए अहमिन्द्र की आयु केवल छह महीनेकी बाकी रह गई तब देवोंने महाराज शूरसेनके घर पर रत्नों की वर्षा करनी शुरु कर दी उसी समय श्री ह्री कीर्ति बुध्दि आदि देवियां आकर महारानी की सेवा करने लगी । श्रावण कृष्ण एकादशी के दिन कृतिका नक्षत्र में रात्रि के पिठले पहर श्री कान्ताने सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त अहमिन्द्रने सर्वार्थ सिध्दि से चयकर उसके गर्भ में प्रवेश किया । सबेरा होते ही रानीने राजासे स्वामीको फल पूछा । तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें किसी जगत्पूज्य तीर्थंकर बालकने प्रवेश किय है । नव माह बाद तुम्हारी कूं खसे तीर्थकर बालक का जन्म होगा । समस्त देव देवेन्द्र उसे-नमस्कार करेंगे । ये सोलह स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे है । पतिदेवके मुंहसे स्वप्नोंका फल और भावी पुत्रका प्रभाव सुनकर रानी श्रीकांता बहुत ही हर्षित हुई । उसी वक्त देवोंने आकर स्वर्गीय वस्त्राभूषणों से राजा रानीकी पूजा की तथा उनके भवनमें अनेक उत्सव मनाये । जब गर्भकेनौ माह सुखसे व्यतीत हो गये तब महारानी श्रीकान्ताने वैशाख शुक्ला प्रतिपदा (परिवा) केदिन कृतिका नक्षत्रमें पुत्र उत्पन्न किया । पुत्रके जन्मसे क्षण एकके लिये नारकी भी सुखी हो-गये । उसी समय भक्ति से प्रेरे हुए चारों निकायके देव हस्तिनापुर आये और वहांसे उस सद्यप्रसूत बालकको मेरुपर्वत पर ले गये । वहां उन्होंने क्षीरसागरके जलसे उसका कलशाभिषेक किया । अभिषेक समाप्त होनेपर इन्द्राणी ने उन्हें बालोचित आभूषण पहिनाये और इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें उनकी स्तुति की । इसके अनन्तर समस्त देव हर्षसे नाचते गाते हुए हस्तिनापुर आये । इन्द्र, जिन-बालक को अपनी गोद में लिये हुए ऐरावत हाथीसे नीचे उतरा और राजभवनमें जाकर बालकको माता श्रीकांता के पास भेजा और भगवान् कुन्थुनाथ नाम रक्खा ।